International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Volume 01, No. 03, July - September, 2019, pp.127-130

fgnh fQYek d vkbu e f'k{kk lLFkku

उमेश कुमार*

प्रस्तावना

सिनेमा की कला ने हमारी भूत, भविष्य और वर्तमान काल की जिंदगी को वर्तमान की तरह दिखाने में सफलता पाई है। हिन्दुस्तानी फिल्मकारों ने सर्वप्रथम ऐतिहासिक–पौराणिक कथाओं को ही फिल्म में स्थान दिया था। पहले आदमी कहानियों या उपन्यासों को पढ़कर या सुनकर ही आश्चर्यचकित होता था। सिनेमा माध्यम ने उन सभी कल्पनाओं को परदे पर साकार कर दिया। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इस बात पर विश्वास नहीं करेगा कि एक अकेला नायक दुश्मन की सेना की एक साथ धुनाई कर देगा। लेकिन सिनेमा में बहुत आसानी पूर्वक ऐसे दृश्य और इससे भी अधिक असंभव दिखाई देने वाले चमत्कार दिखाने की शक्ति है। फिल्म की कोई भी कहानी चाहे वह कितनी ही काल्पनिक क्यों न लगती हो, उसकी पृष्ठभूमि में एक असली समाज और व्यक्तियों के असली सम्बन्ध होते हैं। इस असली समाज में घटित अधिकांश घटनाओं, मानवीय भावनाओं और व्यक्तियों के मध्य लगातार जुड़ने–टूटने वाले सम्बन्धों को हम उन सिनेमाई चमत्कारों के माध्यम से नहीं समझ सकते बल्कि उनके मध्य रहकर ही समझ सकते हैं। उनके साथ रहकर ही उनके अच्छे–बुरे होने का अहसास कर सकते हैं। अतः सिनेमा के बारे में बात करते हुए हमें समाज के असली चेहरे को ही ध्याम में रखना होता है, चाहे फिल्म की कथा का संबंध किसी भी काल से क्यों ना हो। कथा वास्तविक हो या कोरी कल्पना, अपराध की हो या रहस्य–रोमांच की, सामाजिक हो या पारिवारिक, धार्मिक हो या राजनीतिक, जैसे– रामगोपाल वर्मा की फिल्म *भूत* (2003) का जिक्र करें जिसमें मौत के बाद भूत बनी एक लड़की के प्रतिशोध की कथा को दिखाया गया है। वह उन सभी लोगों से प्रतिशोध लेती है, जिन्होंने उसे और उसके बेटे को मौत के घाट उतारा था। जाहिर है भूत के अस्तित्व या अनस्तित्व को इस फिल्म का मुख्य कथ्य समझा जा सकता है। लेकिन यदि इस बात को अनदेखा कर दें तो यह एक बिगड़ैल आदमी द्वारा एक अकेली औरत और उसके मासूम पुत्र की निर्मम हत्या का प्रतिशोध लेने की कोशिश पर आधारित फिल्म है। इस प्रकार यह फिल्म भूत–प्रेत की चमत्कारी घटनाओं के अलग एक सामाजिक समस्या के रूप में भी हमारे समक्ष आती है। इस सामाजिक समस्या का जुड़ाव स्त्रियों के प्रति पुरूषों के दृष्टिकोण से है।

समाज एक अमूर्त अवधारणा है। समाज अनेक प्रकार की संस्थाओं के माध्यम से ही मूर्त रूप धारण करता है। जन्म से मृत्युपर्यन्त व्यक्ति समाज की इन संस्थाओं की एक इकाई के रूप में ही अपने अस्तित्व को सिद्ध करता है और अपने जीवन को ही सफल नहीं बनाता बल्कि समाज में अपनी भूमिका को भी निश्चित करता है और निभाता भी है। लेकिन ये संस्थाएँ हमेशा से मौजूद नहीं थीं और न ही ये सदैव एक समान मौजूद रहती हैं। मानव सभ्यता के विकास ने इन्हें निर्मित किया है। मानव की जरूरतों में परिवर्तन के साथ–साथ पुरानी संस्थाएँ समाप्त होती हैं, नवीन संस्थाएँ निर्मित होती हैं और मौजूदा संस्थाओं के स्वरूप में परिवर्तन भी होता रहता है। काव्य रूप सिनेमा समाज में घटित घटनाओं और प्रतिक्रियाओं से गहराई से जुड़ाव रखता है। सिनेमा के माध्यम से परदे पर जो कहानी दिखाई जाती है, उसमें अनेक तरह के चरित्र या उनकी गतिविधियाँ ही नहीं होती बल्कि वे चरित्र और उनकी गतिविधियाँ समाज की विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। इस प्रकार हरेक फिल्म कहानी प्रदर्शित करते हुए उनसे सम्बद्ध संस्थाओं के स्वरूप चरित्र और उनके प्रति लोगों और समुदायों की सोच को भी उजागर करती है। हिंदी फिल्मों में जब स्त्री पात्रों को मांग भरे हुए, मंगलसूत्र पहने हुए और पति की लम्बी उम्र के लिए करवा चौथ का व्रत रखते हुए फिल्माया जाता है और ऐसी स्त्री को आदर्श स्त्री की तरह दिखाया जाता है तो ऐसी फिल्में न केवल विवाह संस्था को ही दृढ़ करती हैं

* शोधार्थी, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर एवं सहायक आचार्य हिंदी, राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान।

बल्कि वे इस संस्था को धार्मिक संस्था के रूप में भी सुदृढ़ करती हैं। तब वे प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष तौर पुरूष की अच्छाई और तलाक को एक बुराई के रूप में भी प्रचारित कर रही होती हैं। इसी प्रकार जब किसी फिल्म में राष्ट्र–रक्षा के नाम पर किसी भी प्रकार की हिंसा को बढ़ावा दिया जाता है तो सही तौर पर देश की सत्ता पर आसीन राजनीतिक संगठन के वर्गीय चरित्र पर पर्दा डाला जा रहा होता है। ऐसा भी हो सकता है कि जो राजनीतिक संगठन देश के लोगों को बाह्य शत्रु का भय दिखाकर अपने पीछे लामबंद करना चाहता है, वह ऐसा शोषक–शासक वर्ग हेतु कर रहा हो। फिल्म *ताल* में नायक और नायिका के प्यार को विदेशी शीतल पेय कम्पनी के प्रचार के माध्यम से दिखाया गया है, यहाँ प्यार को मानवीय मूल्य के रूप में प्रदर्शित करने से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है विदेशी शीतल पेय की पूरे संसार में उपस्थिति। इस प्रकार यह फिल्म बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते साम्राज्य को ही नहीं दिखाती बल्कि उनके विस्तार को एक सकारात्मक सोच के साथ प्रस्तुत करती है। इस प्रकार इसमें आर्थिक उदारीकरण की उस पहल का साथ दिया गया है, जिसके कारण मजबूर होकर अनेकों किसानों ने आत्महत्या कर ली और अनेकों मजदूर प्रत्येक वर्ष बेरोजगारों की संख्या में बढ़ोतरी कर रहे हैं।

फिल्म में हरेक घटना, स्थिति और चरित्र विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के प्रति दर्शकों के रूख को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित जरूर करते हैं। अपनी प्रेमिका की प्रसन्नता हेतु अग्रज के खिलाफ बोलने वाला नायक (*गुलाम*) पारिवारिक सम्बन्ध से अधिक सामाजिक कर्त्तव्य को अधिक तवज्जो दे रहा होता है। एक मध्यम परिवार की लड़की से विवाह करने हेतु अपने अमीर दत्तक माता–पिता के परिवार को छोड़ने का साहस दिखाने वाला नायक (*कभी खुशी कभी गम*) ऐसा करता हुआ धन से अधिक महत्व प्यार को दे रहा होता है। अपने पति की इच्छा के समक्ष अपनी इच्छाओं का गला दबाने वाली बेटी को अपने प्रेमी के साथ भागने हेतु उकसाने वाली माँ (*दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे*) पुरूष आधिकारिक पारिवारिक संरचना को ढ़हाने की कोशिश कर रही होती है।यह संभव है कि इस समस्त फिल्मों का प्रभाव अंततः धन और विलासिता की कामना के रूप में ही व्यक्त होता हुआ दिख सकता है। लेकिन देखना यही होगा कि फिल्म के चरित्र किन परिस्थतियों में किस तरह के निर्णय करते हैं और उन निर्णयों का असर सामाजिक संस्थाओं पर किस तरह दिखाई देता है। इसलिए सिनेमा पर दृष्टि डालते समय यह जरूर परीक्षण करना चाहिए कि उनमें प्रदर्शित सामाजिक संस्थाओं के प्रति किस तरह का नजरिया रखा गया है। वह संस्था परिवार, विवाह, धर्म, जाति, राजसत्ता, समुदाय सत्ता या शिक्षा आदि चाहे कुछ भी हो।

हिन्दी सिनेमा में हम शिक्षा नामक संस्था के चित्रण पर विचार करें तो हम समाज के परिवर्तन के साथ उसमें होते हुए परिवर्तनों को सहज रूप में समझ सकते हैं। महात्मा गाँधी के विचार थे कि शिक्षा संस्थान जीवन मूल्यों के साथ व्यावहारिक जीवन के लिए जरूरी काम भी सिखाए। भालेराव पेंढ़ारकर ने इसी कथन से प्रेरणा लेकर *वंदेमातरम्आश्रम* (1926) फिल्म निर्मित की थी। गाँधी के आदर्शों से प्रभावित ऐसी भी बहुत सी फिल्में निर्मित हुई जिनमें गरीब बच्चों को शिक्षा देने पर जोर दिया गया था और हाथ से काम करने को अच्छा बताया गया था। *जागृति* (1954), *दोस्ती* (1964), *बूट पालिस*(1954) आदि फिल्मों में हम इस आदर्शवाद की झलक पाते हैं। चिकित्सा शिक्षा पर राजकुमार हिरानी ने *मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.* (2003) और *लगे रहो मुन्नाभाई* (2006) फिल्में बनाई थी। ये फिल्में सफल और सार्थक रहीं हैं। *मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.* शिक्षा और चिकित्सा क्षेत्र का ऐसा सम्मिश्रित करूण व्यंग्य है, जिसने परदे को मनुष्यता की संवेदनाओं से हिला दिया। यह एक नशे की सफलता थी जो किसी चरित्र के माध्यम से कलाकार को मिलती है। जहाँ संजय दत्त गुम जाता है, मुन्नाभाई बच रह जाता है। यह विपरीत चाल चलने वाला चरित्र एक नई इमेज के रूप में स्थापित हुआ। *लगे रहो मुन्नाभाई* में नायक मुन्ना पर महात्मा गाँधी के विचारों का प्रभाव है। एक दृश्य में मुन्ना गाँधी के प्रभाव में आकर प्रापर्टी डीलर लक्खी द्वारा दिये जा रहे निजी हित के तमाम प्रलोभनों को ठुकराते हुए और व्यक्तिगत सुख–सुविधाओं को किनारे करते हुए जब असहाय और अपने घर–परिवार से बेदखल बुजुर्गों के पक्ष में खड़ा हो जाता है तो उसका यह उनका पक्ष लेना लक्खी के बहाने बाजार के विरोध में भी खड़ा होना है। आखिर बाजार भी तो लक्खी की तरह लालच और प्रलोभनों के माध्यम से लोगों को अपने आगोश में लेता जाता है। यह बाजार ही आज साम्राज्यवादियों का सबसे बड़ा हथियार है। फिल्म इस बाजार का प्रतिरोध करती है। बाद के दौर में अधिकांश फिल्मों में शिक्षा संस्थानों का उपयोग राजनीतिक हथकंडों और अपराधपूर्ण घटनाओं हेतु किया जाने लगा। प्रायः ऐसी सभी शिक्षा संस्थाएं निजी प्रबंधकों के हाथ में होती हैं जो अपने व्यावसायिक और राजनीतिक प्रलोभन हेतु इन संस्थानों का प्रयोग करते हैं। विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और विद्यालय भी उनके लिए शक्ति प्रदर्शन का माध्यम हैं। ऐसी फिल्मों में छात्र संघों की राजनीति की भी घिनौनी हरकतें प्रदर्शित की जाती हैं, जबकि इसकी सकारात्मक भूमिका को अक्सर बढ़ावा नहीं दिया जाता है। *इम्तिहान* से लेकर *शिवा* तक ऐसी अनेक फिल्मों में इसी तरह की तसवीर पेश की गई है।वी.शांताराम की *बूंद जो बन गई मोती* (1967) फिल्म में

जितेन्द्र ने नायक की भूमिका अदा की है। इसमें शिक्षक छात्रों को कक्षाओं से बाहर ले जाकर प्रकृति की गोद में प्रकृति के माध्यम से शिक्षा देता है। संयुक्त परिवार आधारित फिल्मों में प्रायः घर का टूटना शिक्षित और आधुनिक स्त्री के कारण दिखाया जाता था। उसकी तुलना में कम शिक्षित और घरेलू संस्कार की स्त्री को आदर्श स्त्री के रूप में दिखाया जाता था। फिल्मों में शिक्षा का इस प्रकार का चित्रण भी इस रूढ़िवादी धारणा पर आश्रित है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली भारतीय संस्कृति और परम्परानुकूल नहीं है। इस प्रकार की फिल्में यह चित्रण करती थीं कि भारतीय स्त्री के लिए शिक्षा उतनी ही उचित है जितनी से वह घरेलू सदस्यों को रामायण पढ़कर सुना दे या चिट्ठी–पत्री लिख सके। करन जौहर निर्देशित *कुछ कुछ होता है*(1998) में रानी मुखर्जी जो विदेश से पढ़कर लौटी है और जिसने तंग स्कर्ट पहन रखा है वह महाविद्यालय के अन्य विद्यार्थियों को 'ओम जय जगदीश हरे' आरती गाकर प्रभावित करती है। इस प्रकार फिल्मकार यह दिखाने की कोशिश करता है कि आधुनिक और पश्चिमपरस्त शिक्षा के होते हुए हम अपनी भारतीयता को बचाये रख सकते हैं। परेशानी यह है कि यहाँ भारतीयता को एक बहुत साधारण प्रकार की आरती में सराबोर कर दिया गया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि आधुनिकता और भारतीयता की सारी संकल्पना बहुत ही बचकानी सिद्ध होती है और यह सब शिक्षा के माध्यम से व्यक्त किया जा रहा है। दरअसल स्वतंत्रता पश्चात् जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है उसकी विडंबना यही है कि यह विद्यार्थियों को न तो भारतीयता की सही तसवीर प्रस्तुत कर पाई है और न ही आधुनिकता का अर्थ समझा पाई है। हिंदी सिनेमा इसी विडंबना को ही अभिव्यक्त करता है। संजय लीला भंसाली निर्देशित *ब्लैक* (2005) में गूँगी–बहरी–अंधी लड़की के जीवन में रोशनी का संचार करने में एक शिक्षक की भूमिका को आधार बनाया गया है। इसमें अमिताभ बच्चन एवं रानी मुखर्जी ने मुख्य भूमिका अदा की है। इसमें दिखाया गया है कि जिस तरह से मकड़ी बार–बार गिरने के बावजूद कई कोशिशों के बाद अपना घर बना ही लेती है। चींटी पहाड़ पर चढ़ ही जाती है, उसी तरह से यह संभव है कि कोई गूँगी–बहरी–अंधी लड़की पढ़–लिखकर ग्रेजुएशन कर ले और एक लेखिका भी बन जाये। इस फिल्म में दिखाया गया है कि दुनिया में नामुमकिन कुछ भी नहीं है और दूसरों के लिए जीने को जीना कहते हैं।आमिर खान निर्देशित पहली फिल्म *तारे जमीन पर* (2007) उपेक्षित मंद बुद्धि बच्चों की शिक्षा पर आधारित है। इसमें दर्शील सफारी ने अद्‌भुत अभिनय किया है। ऐसे बच्चे जो कुछ भी सही नहीं कर पाते हैं। एक शिक्षक उनकी प्रतिभा जानकर उन्हें सही पहचान दिलाने में सहायक होता है। राज कुमार हिरानी के निर्देशन में निर्मित *थ्री इडियट* (2009) शिक्षा की समस्या पर एक दस्तावेज की तरह मानी जाती है। इसमें बताया गया है कि परीक्षा पास करना और ज्ञान प्राप्त करना दोनों में अन्तर है शिक्षा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने की भी होनी चाहिए। हमारी शिक्षा प्रणाली में केवल पास प्रणाली पर जोर दिया जाता है। ज्ञान प्रणाली की तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता है। इसमें आमिर खान ने बहुत अच्छी भूमिका निभाई है।शिक्षा प्रणाली पर बिहार के शिक्षक आनंद कुमार के जीवन पर बना बायोपिक हैं *सुपर थर्टी* (2019)। इसके निर्देशक आनन्द बहल ने ऋतिक रोशन से शिक्षक की भूमिका अदा करवाई है। सामाजिक सोद्देश्यता वाली फिल्म की कथा इस तरह है कि आनंद बहुत मेधावी विद्यार्थी था और उसे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश का आमंत्रण पत्र मिलता है लेकिन बिहार से लंदन की यात्रा का खर्च उसके काबू से बाहर था। जब उसे प्रथम स्थान आने पर मानवीय शिक्षामंत्री महोदय जी ने गोल्ड मेडल दिया था तब उन्होंने आगे की पढ़ाई में सहायता के लिए बोला था। आनन्द और उसके पिताजी मंत्री जी के दरबार में जाते हैं लेकिन आदतन अपनी बात से मुकर जाने वाले मंत्री जी सहायता करने की जगह बातों में ही सब कुछ कर देते हैं। मंत्री जी बातों में ही माहिर है। बातों से मन बहलाकर समस्या का समाधान करना चाहते हैं। फिल्म में निजी कोचिंग केन्द्र चलाने वाला एक पात्र है, जो आनन्द को पर्याप्त धन देकर अपने कोचिंग केन्द्र पर पढ़ाने हेतु रख लेता है। संस्था के सभी छात्र अमीर घरों की संतान हैं और ये सभी डिग्री लेना चाहते हैं। आनन्द की वजह से कोचिंग केन्द्र खूब फलता–फूलता है। लेकिन एक रात आनन्द एक गरीब बच्चे को स्ट्रीट लैम्प के नीचे पढ़ता देखता है। वह एक कठोर फैसला लेता है और कोचिंग केन्द्र छोड़कर गरीब बच्चों को निःशुल्क में पढ़ाने वाली संस्था खड़ी कर देता है। उसके इस फैसले से परेशान कोचिंग केन्द्र का मालिक उसे हर कदम पर हतोत्साहित करने की चाल चलता रहता है। उसकी संस्था की बिजली काट दी जाती है। लेकिन आनन्द के बच्चे गरीबी और भूख से संघर्षरत–अध्ययनरत रहते हैं। नकारात्मक शक्तियाँ आनन्द को चुनौती देती हैं कि उसके छात्रों और कोचिंग केन्द्र के छात्रों के बीच प्रतियोगिता करा लें। इस घटनाक्रम में भूतपूर्व प्रेमिका उसका साथ देती है। मंत्री महोदय जी कोचिंग केन्द्र के मालिक से आनन्द को किसी भी तरह रास्ते से हटाने की बोलते हैं यहाँ तक कि उसकी हत्या की बात भी। सारे प्रयास असफल हो जाते हैं और आनन्द कुमार बच जाते हैं। उसके सभी बच्चों की मेहनत रंग लाती है और सब चयन हो जाता है।

विडम्बना यह है कि हमने आदर्श शिक्षकों को नजर अंदाज कर दिया। शिक्षा प्रणाली जड़ हो गई है। हमारी शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। इसी कारण सारी समस्याओं का ढेर लग गया। हमने ईमानदार प्रतिभावान शिक्षकों को खोना प्रारंभ कर दिया है। शिक्षा संस्थानों के आईने में तेज गति से परिवर्तित समाज भी नजर आता है। कई दशक पूर्व ही विज्ञान संकाय से अधिक छात्र वाणिज्य संकाय में उपस्थित होने लगे थे और कला संकाय की कक्षाओं में शून्यता भरने लगी थी। आज के दौर में व्यापार प्रबन्धन की शिक्षा में बहुत भीड़ है। यह कैसी विडंबना है कि जिस देश में व्यवसाय सुस्त गति में है, वहाँ व्यवसाय प्रबन्धन तेज गति से बढ़ रहा है। दरअसल जरूरत शिक्षा प्रणाली सुधारने की है। 1970 में श्री लाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' उपन्यास की रचना की थी। उपन्यास छपे अर्द्धशताब्दी बीत गई है लेकिन स्थिति ज्यों की त्यों है। उपन्यासकार लिखते हैं कि भारत में शिक्षा प्रणाली सड़क पर पड़ी उस बीमार कुतिया की तरह है, जिसे सब लतियाते हैं परन्तु सुधारने का प्रयत्न कोई नहीं करता। हमारे देश का बजट शिक्षा पर अधिक खर्च होना चाहिए क्योंकि देश का विकास शिक्षा से ही संभव है। देश में आनन्द कुमार जैसे महान शिक्षक हों जो सम्पत्ति के मोह को त्यागकर चरित्र–निर्माण में सहायक सिद्ध हों।

lanHk xzFk lph

- जवरीमल्ल पारख, हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, 2006, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा.लि. दिल्ली।
- जवरीमल्ल पारख, लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ, 2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
- हेतु भारद्वाज, संस्कृति, शिक्षा और सिनेमा, 2012, मंथन पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- विनोद भारद्वाज, नया सिनेमा, 1985, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- राही मासूम रजा, सिनेमा और संस्कृति, 2003, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- सं. मृत्युंजय, सिनेमा के सौ बरस, 2015, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली।
- सत्यदेव त्रिपाठी, समकालीन फिल्मों के आईने में समाज, 2013, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली।
- जवरीमल्ल पारख, साझा संस्कृति, सांमदायिक आतंकवाद और हिंदी सिनेमा, 2012, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- संपा. कमला प्रसाद, स्वयं प्रकाश, राजेन्द्र शर्मा, प्रहलाद अग्रवाल, हिन्दी सिनेमा : बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, 2009, साहित्य भंडार, इलाहाबाद।
- दैनिक भास्कर

fQYe

- वंदेमातरम्आश्रम (1926)
- जागृति (1954), बूट पालिस (1954)
- दोस्ती (1964)
- बूंद जो बन गई मोती (1967)
- कुछ कुछ होता है (1998)
- मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस. (2003)
- ब्लैक (2005)
- लगे रहो मुन्नाभाई (2006)
- तारे जमीन पर (2007)
- थ्री इडियट (2009)
- सुपर थर्टी (2019)

❖◆❖